शिक्षा का सशक्त माध्यम प्रवास विद्या*

*राधा भट्ट***

सभी को शिक्षा मिले इसमें संदेह नहीं है परंतु कैसी शिक्षा मिले? और कैसे मिले—ऐसे प्रश्न हमेशा से उठते रहे हैं। शिक्षा का संबंध मात्र निजी विकास से न होकर संपूर्ण सामाजिक ढाँचे से होता है। वास्तविक सार्थकतापूर्ण शिक्षा को विद्यालयों की चार दीवारी में कैद नहीं किया जा सकता। उसके लिए शिक्षा को व्यक्ति और समाज से जुड़ना पड़ता है। विद्यार्थियों में बुद्धिमता के साथ-साथ राष्ट्रीय चरित्र की समझ होना ज़रूरी है। यह समझ अपने देश के भूगोल, उसमें रहने वाले जन-समुदाय, उनकी जीवन-शैली व उनके सुख-दुख से परिचित होने पर बनती है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने में शिक्षा की एक बहुत सशक्त विद्या है 'प्रवास विद्या' जिसका उल्लेख गाँधी जी ने भी किया था। आज प्रवासी स्कूलों (Residential Schools), कॉलेजों को प्रवास विद्या के रूप में बदलने की आवश्यकता है।

"सबको शिक्षा मिलनी चाहिए।" परंतु कैसी शिक्षा? यह मेरा प्रश्न होता है। वर्तमान प्रचालित शिक्षा तो कई समस्याओं का सृजन करने वाली शिक्षा पद्धति बनी हुई है। माना तो गया है कि इस शिक्षा से निजी विकास होता है। किंतु वास्तविकता यह है कि समग्र रूप से निजी विकास भी नहीं हो पाता और सच में शिक्षा का संबंध मात्र निजी विकास से है भी नहीं, वरन् यह समाज के संपूर्ण ढाँचे से संबंधित है। शिक्षा चारों ओर फैले मानव समुदाय की स्वतंत्रता, लोकतंत्र, समुचित विकास, संपूर्ण पर्यावरण एवं अर्थव्यवस्था को विकसित करने वाला असर डाले, व इनका आधार भी बने, यह है शिक्षा की वास्तविक सार्थकता।

ऐसी आधारभूत गुणवत्ता वाली शिक्षा विद्यालयों की चार दीवारों के भीतर किए जाने वाले अक्षर ज्ञान एवं बौद्धिक अभ्यास में सीमित नहीं हो सकती। इसके लिए शिक्षा के कार्य को व्यक्ति और समाज के संपूर्ण जीवन के पूरे विस्तार में

*बुनियादी शिक्षा, एक नयी कोशिश, फरवरी-अप्रैल 2008 से साभार प्रकाशित.

**अध्यक्षा, गाँधी शांति प्रतिष्ठान, नयी दिल्ली-2.

गूँथना होता है। बच्चे को आगे बढ़कर उसके घर-परिवार, खेत-आँगन, गाँव-समाज और पूरे देश-दुनिया तक का ज्ञान व अनुभूति, प्रत्यक्ष-दर्शन व अनुभव, उसमें शरीर-मन बुद्धि में हम जानते हैं कि शिक्षण-पद्धति के बदले शिक्षण-संस्कृति की दिशा दिखाने वाले महात्मा गाँधी ने भारत की परिस्थिति के अनुरूप शिक्षा का स्वरूप हमारे सामने बुनियादी शिक्षा के रूप में रखा था। उन्होंने कहा था, "मैं इतना अवश्य चाहूँगा कि बुद्धि के विकास के साथ-साथ शारीरिक श्रम और हृदय का शिक्षण भी होना चाहिए। प्रत्येक राष्ट्रीय शिक्षण-संस्था की कीमत और उपयोगिता उसके विद्यार्थियों की बुद्धिमत्ता के तेज से नहीं, बल्कि राष्ट्रीय चरित्रा से तथा पींजन, चर्खा और कर्घा चलाने की कुशलता से ही आँकी जाएगी।" (नवजीवन 26.12.1924, शिक्षण और संस्कृति पृष्ठ 159)

यह राष्ट्रीय जनसमाज के प्रत्यक्ष दर्शन व उसमें की गई सीधी भागीदारी से बनता है। यह राष्ट्रीय चरित्र की समझ, अपने देश के भूगोल, उसमें रहने वाले जन समुदाय, उनकी जीवन शैली, उनके घर, गाँव, नगरों की अपनत्व और प्रीतिभरी दृष्टि से देखने पर बनता है, उनके दर्दों की कसक पहचानने से बनता है, उनकी क्षमताओं से उल्लासित होने से बनता है । तब बच्चा व्यक्ति के ''खोल'' आवरण से बाहर निकलकर समाज व राष्ट्र के आकार में स्वयं को स्थापित करता है।

इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए शिक्षा की एक बहुत सशक्त विद्या है, "प्रवास विद्या"। मुझे प्रवास-विद्या स्वरचित शब्द लगा था पर मैं आश्चर्यमुग्ध हो गई जब "शिक्षण और संस्कृति" के पृष्ठ-75 पर बापू ने भी इसे "प्रवास विद्या" कहा है, उनके विचार इस प्रकार हैं - "इसके बाद क्रम से भूगोल विद्या, जिसे "प्रवास विद्या" भी कहते हैं आएगी। अगर यूरोप ने असाधारण उन्नति की है तो उसका कारण सम्राट अकबर के दिनों से यूरोपियन लोगों का यात्रा का व्रत लेना ही है। तब से आज तक वे लगातार घूमते ही रहे हैं। इसका लालच और जिज्ञासा अदम्य है। हमें भी लालच छोड़कर केवल जिज्ञासा से प्रवास को बढ़ाना चाहिए। जिससे घूमकर भारतवर्ष का दर्शन नहीं किया, वह स्नातक ही नहीं कहा जा सकता, यह कहने में मैं कोई आपत्ति नहीं देखता।"

(गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद में दिए गए भाषण का अंश, हिंदी नवजीवन 23.1.1930)

इस ''प्रवास विद्या'' के उत्सावर्धक परिणामों के अनुभव मैंने एक शिक्षिका के रूप में लक्ष्मी आश्रम की बुनियादी तालीम की छात्राओं के साथ प्राप्त किए हैं ।

वे दिन भूदान ग्रामदान आंदोलन के थे, जिसे विनोबा ने ''यज्ञ' कहा था। लक्ष्मी आश्रम इस यज्ञ धारा में अपनी सभी छात्राओं व शिक्षिकाओं को लेकर उतर गया था। सालभर हमारा कुछ समय पदयात्राओं की तैयारी करने में जाता और शेष समय पद यात्राओं में लगता था। जिन घाटियों या पर्वतमालाओं के बीच पदयात्रा चलने वाली थी, उसके भूगोल, इतिहास, जन-जीवन तथा विशेषताओं को छात्राओं को बताना, उस क्षेत्र के संबंध में तथा भूदान ग्रामदान के संबंध में पत्रिकाएँ व पुस्तकें छात्राओं को पढ़ने को देना और पद यात्रा में गाए जाने वाले गीतों, नृत्यों तथा नुक्कड़ नाटकों (आँगन

नाटकों) तथा नारों आदि का उनसे अभ्यास करवाना। पूर्व तैयारी का यही स्वरूप होता था। "भूदान यज्ञ" पत्रिका के नित्य वाचन से 'ज़मीन जोतने वाले को ज़मीन मिले' तथा 'दानं सम विभागम्' के क्रांतिकारी विचार से ही सुपरिचित होती थी। छात्राएँ व शिक्षिकाएँ अपने सामान को पिट्ठू की पीठ पर लादकर पदयात्रा में निकल जाती थीं। राह में चलते हुए उनके नारों व गीतों के बुलंद स्वर घाटियों को गूंजाते रहते थे। गाँव में पहुँचकर शिक्षिकाओं व छात्राओं का पूरा समूह सर्वप्रथम व्यस्त महिलाओं के साथ श्रम में जुट जाता, कोई ऊखल में धान कूटने लगती तो कोई उनके साथ गायों के लिए चारा काटने लगती, कोई खेती में गुड़ाई-निड़ाई में उनका साथ देती। कुछ छात्राएँ ग्राम सफ़ाई करने लगतीं। पूरे गाँव में लड़कियाँ ही लड़कियाँ छा जातीं और थोड़ी देर में गाँव की लड़कियों व सभी महिलाओं, पुरुषों व बच्चों से उनका परिचय हो जाता। कुछ बच्चे उनकी ऊँगली पकड़कर मेरे पास आते, कभी कोई छात्रा किसी भूमिहीन अकेली महिला का दर्द बताने आती। कभी किसी छोटी भूमि पर उगाई सुंदर उपज का गुणगान ये छात्राएँ करतीं। इस श्रम-कार्य के बाद गपशप करते हुए उन्हें गाँव में भूमिवान-भूमिहीनों, गरीब-अमीरों, स्वर्ण-अवर्णों तथा जल-जंगल-जमीन का अनौपचारिक सर्वेक्षण कर लेना होता था। इसकी पूरी जानकारी तब भी उन्हें मिलती थी जब वे उनके साथ काम कर रही थी और तब भी जब वे सभी गाँव के विभिन्न परिवारों में भोजन करने जाती थीं। इस प्रकार गाँव की खेती, जंगल, पानी, पर्वत, उद्योग-व्यापार व ठेकेदारी सबका खाका सामने खिंच जाता था।

तब होती थी वे सभाएँ, जिनमें भूदान का करुणामूलक संदेश व ग्रामदान, ग्रामस्वराज्य का क्राँतिकारी विचार प्रस्तुत करना होता था। कभी दिन-दोपहर के समय गाँव के किसी बड़े आँगन में जाड़ों की गुनगुनी धूप में सारे गाँव के लोग एकत्र होते थे तो कभी शाम को आँगन के बीच जलती धूनी के चारों ओर सभा आयोजित होती थी। तब भूदान पर छोटे भाषणों के साथ छात्राओं द्वारा नुक्कड़ नाटक-गाँव की स्थिति के अनुरूप कोई नवरचित लघु नाटिका या फिर 'कितनी जीमन' जैसे टालस्टाय की कृति को अभिनीत किया जाता। साथ में भूदान-विचार पर स्थानीय भाषा में रचित कुमाँउनी गीत व सामूहिक नृत्य या "हवा और पानी सी धरती जन-जन में बाँट जाए।" जैसे भूदान ग्रामदान के देशभर में गूँजने वाले हिंदी गीत गाँव में एक समा बाँध देते थे। मुझे यह सुखद आश्चर्य होता था कि छात्राएँ दिनभर में ली गई गाँव की विशेष जानकारी को भी अपने नाटक में स्वतः ही जोड़ लेती थी, ताकि संदेश गाँव के लिए अपना बन जाए और हम शिक्षिकाएँ इसलिए भी खुश होतीं कि हमें यह प्रमाण मिल जाता था कि छात्राओं ने गाँव का समाजशास्त्र व अर्थशास्त्र अच्छी तरह खोज निकाला है और समझा है। कई-कई गाँवों की स्त्रियाँ कहती थीं, "बड़े लोगों के भाषणों से अधिक हमें लड़कियों के नाटकों से बात समझ में आई है।"

एक और भी सामूहिक कार्यक्रम था जो बच्चे जब भी उपलब्ध हों तब छात्राओं व शिक्षिकाओं की इस भूदान टोली के द्वारा किया जाता था। वह था बच्चों को सामूहिक खेल खिलाने का काम। इसमें भी बच्चों के गुणधर्म का काम होता था और

छात्राओं को नेतृत्व करने व व्यक्तित्व-विकास का अवसर मिलता था।

शाम के दो काम इस पदयात्रा टोली के लिए लाजमी थे। पहला दिन भर का मूल्यांकन तथा डायरी-लेखन। इतिहास, भूगोल, समाजशास्त्र व अर्थशास्त्र के व्यावहारिक शिक्षण के साथ हिंदी भाषा में भाषण देने व डायरी लिखने के कारण भाषा का शिक्षण भी होता था। कल को ये छात्राएँ गाँव के कार्यकर्ता के रूप में सेवा से समाज परिवर्तन का काम कर सकें, इसका भी व्यावहारिक शिक्षण इन पदयात्राओं से मिलता था।

इसी प्रकार शराब विरोधी आंदोलनों व चिपको आंदोलन का सत्याग्रह काल भी हमारे विद्यालय के लिए शिक्षा में समवाय का साधन बन गया था। इसमें हमारा अनुभव था कि आंदोलनों को बल देते हुए छात्राओं ने स्वयं भी बौद्धिक, शारीरिक एवं भावनात्मक शिक्षण प्राप्त किया था। इस शिक्षण शैली में शिक्षकों को बहुत जागरूक व समझयुक्त होना होता था। उन्हें स्वयं इस प्रकार की शिक्षण शैली पर श्रद्धा व विश्वास होना चाहिए था तभी इस प्रक्रिया के उत्तम परिणाम सामने आते थे। आज भी लक्ष्मी आश्रम, उत्तराखंड में 'नदी बचाओ' आंदोलन में अपनी छात्राओं को 'प्रयास विद्या' का अनुभवजन्य ज्ञान दे रहा है। ऐसे सत्याग्रहों द्वारा दी जाने वाली शिक्षा के बारे में गाँधी जी ने लिखा है-

"सत्याग्रह ही सबसे उच्च और सर्वोत्तम शिक्षा है। ऐसी शिक्षा बच्चों को साधारण पढ़ाई-लिखाई के बाद नहीं, बल्कि उसके पहले ही दी जानी चाहिए। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि बच्चों को अक्षर-ज्ञान और संसार की जानकारी हासिल करने से पहले यह जानना चाहिए कि आत्मा, सत्य और प्रेम क्या है और आत्मा में कौन-सी शक्तियाँ छिपी पड़ी हैं।

वास्तविक शिक्षा का यह एक आवश्यक अंग होना चाहिए कि बच्चा सीख ले कि जीवन-संघर्ष में प्रेम द्वारा, सत्य द्वारा शत्रु और कष्ट-सहन द्वारा, हिंसा पर विजय पाई जा सकती है।"

(इंडियन ओपिनियन स्वर्ण अंक 1914, संपूर्ण गाँधी वाङ्मय खण्ड़ 12 पृष्ठ 452)

प्रवास विद्या में उक्त समाज परिवर्तनकारी अभियानों व आंदोलनों का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। किंतु सामान्य रूप से गाँवों मे पदयात्रा करते हुए सभाओं में नाटकों, गीतों व लघु भाषणों के द्वारा जागरूकता लाने के कार्यक्रम, समाज की स्थितियों का बच्चों द्वारा अनौपचारिक सर्वेक्षण, सामूहिक सफाई, सामूहिक प्रार्थना, बच्चों को खेल खिलाना आदि करते हुए भी प्रवास विद्या का गहरा प्रभाव छात्राओं के जीवन पर पड़ते हुए मैंने देखा है। शिक्षा को प्रभावी बनाने के लिए शिक्षिका व छात्राओं के बीच एक अच्छी समझ होना, अत्यंत आवश्यक है। शिक्षिका व छात्रों के बीच व्यक्ति से व्यक्ति का यह संबंध शिक्षिका बनते हुए मैंने इन्हीं प्रवासों में पाया था। दूसरी ओर छात्राएँ भी कहती थीं, ''हम गाँवों से आई हैं परंतु गाँव को इस दृष्टि से हमने कभी देखा न था। इस प्रवास में गाँव मानो भीतर से खुलकर हमारे सामने आ गया।'' यह केवल मुख से ही नहीं, उनके द्वारा रचित कविताओं, कहानियों, चित्रों व लेखों में भी प्रकट होता है।

डायरी लेखन 'प्रवास विद्या' का एक अनिवार्य अंग था। यों तो लक्ष्मी आश्रम में डायरी लेखन तथा हस्तलिखित पत्रिकाओं का लेखन व संपादन सदा ही मौलिक लेखन के दो सफल माध्यम रहे

हैं, परंतु प्रवास को शिक्षण की दृष्टि से अधिक एवं विधियुक्त बनाने में डायरी लेखन बहुत सक्षम माध्यम बनती है।

सभी प्रकार के प्रवासों का अंतिम कार्य होता था, पूरे विद्यालय के सामने अपने प्रवास की 'चर्चा' प्रस्तुत करना, यह 'चर्चा', संवाद होती थी विवरण नहीं। प्रश्नोत्तर, अनुभूत टिप्पणियाँ व साझी अभिव्यक्ति को ही चर्चा कहा जाता था। अनुभवों का विस्तृत विवरण अपनी मासिक हस्तलिखित पत्रिका में दिया जाता था, जो भाषा व विचार की दृष्टि से अधिक सुव्यवस्थित व क्रमपूर्ण होता था।

मैंने हमेशा ही अनुभव किया कि आठ-दस या बारह दिनों की ऐसी पदयात्रा के बाद मेरी छात्राओं के व्यक्तित्व जैसे अचानक ही अधिक जिम्मेवार हो जाते थे। अपने व्यक्तिगत अर्थों (स्वार्थों) से निकलकर उनका चिंतन मानो समाज के दायरे में प्रवेश कर जाता था। मैं मानती हूँ कि एक नागरिक की, एक सच्चा मानव बनाने की सही शिक्षा ऐसी ही होनी चाहिए जिसे गाँधीजी ने राष्ट्रीय चरित्र कहकर अभिव्यक्त किया है।

आज सामान्य स्कूलों, कॉलेजों के छात्रों के 'प्रवास' तो बहुत सारे होते हैं पर उन्हें 'प्रवास विद्या' के रूप में परिणत करने की ज़रूरत है ताकि हमारे बच्चे समाज के सभी तबकों से भी हार्दिकता जोड़ सकें।